दैनिक भास्कर

Date: 24-09-26

श्रेष्ठ शैक्षणिक संस्थान तो जातिवाद से ग्रस्त ना हों

संपादकीय

देश की प्रथम पांच आईआईटी में से दूसरी आईआईटी बॉम्बे में एक दलित छात्र की आत्महत्या पर उसके परिवार द्वारा आरोप लगाया गया कि डीन / प्रोफेसर ने उस पर जातिवादी टिप्पणी की थी। इसके बाद उन्हें डीन पद से हटा दिया गया। प्रतिक्रिया में डीन के पक्ष में भी छात्रों/फैकल्टी का एक वर्ग उठ खड़ा हुआ। एक अन्य घटना में इलाहाबाद हाईकोर्ट ने प्रयागराज एनएलयू के एचओडी वार्डन को सभी प्रशासनिक पदों से मुक्त करने के आदेश दिए। उन पर भी दलित छात्रों के खिलाफ जातिवादी पूर्वग्रह का आरोप था। सवाल इन प्राध्यापकों की अपराध-लिप्तता से बड़ा है चिंता इन संस्थाओं के वातावरण में जातिवादी जहर घुलने की है, जो शैक्षणिक माहौल को और कलुषित ही करेगा। भारत ही नहीं, दुनिया के सभी समुन्नत देशों में अकादमिक संस्थाओं का प्रशासन भी प्रोफेसर ही सम्भालते हैं, ताकि शैक्षिक स्वायत्तता बनी रहे। लेकिन अगर छात्रों का एक वर्ग जातिवादी आरोप के समर्थन में प्रोफेसर के खिलाफ है प्रोफेसर के साथ, तो आने वाले दिनों में परिसर में क्या कोई खुद्दार प्राध्यापक प्रशासनिक पद स्वीकार करेगा ? क्या कोई डीन या वार्डन बनाना चाहेगा? इससे भी बड़ा मसला है जातिवाद या साम्प्रदायिकता जैसी कुरीतियों के प्रसार का, जो समय के साथ बढ़ती ही गई हैं। दुनिया की सबसे कठिन परीक्षाओं में से एक जेईई से आए बच्चे या इन विषयों में महारत हासिल किए प्राध्यापकों को तो जातिवाद या साम्प्रदायिकता के मर्ज से अछूता ही रहना चाहिए।

Date: 24-09-26

कोर्ट की निगरानी और सरकार की कार्रवाई साथ में ही असरदार

अघ्र्य सेनगुप्ता और स्वप्निल त्रिपाठी, (विधि सेंटर फॉर लीगल पॉलिसी में पदाधिकारी)

पिछले सप्ताह प्रतियोगी परीक्षाओं में पेपर लीक के मामलों के बाद नेशनल टेस्टिंग एजेंसी (एनटीए) में सुधार की मांग वाली याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने एक असामान्य टिप्पणी की। जस्टिस पी.एस. नरसिम्हा और आलोक अराधे की पीठ ने कहा कि वह नई दिल्ली स्थित एनटीए के नए मुख्यालय का दौरा कर सकती है। मकसद यह देखना है कि एनटीए ने कर्मचारियों और बुनियादी ढांचे को लेकर कोर्ट के सामने जो दावे किए हैं, वे जमीन पर कितने सही हैं और क्या वह परीक्षाएं ठीक से कराने में सक्षम है।

आम तौर पर न्यायाधीश अदालत के भीतर उनके समक्ष पेश किए गए साक्ष्यों और दलीलों के आधार पर फैसला करते हैं। लेकिन स्थल निरीक्षण के भी इतिहास में कई उदाहरण मिलते हैं। 1978 में सुनील बत्रा ने तिहाड़ जेल में कैदियों के साथ हो रहे व्यवहार को लेकर सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया था।

मामले की सुनवाई कर रही तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम.एच. बेग और जस्टिस कृष्ण अय्यर तथा कैलासम की पीठ स्वयं तिहाड़ पहुंची और वहां जेल तथा कैदियों की स्थिति देखी। उस समय कोर्ट के सामने एक अन्य कैदी चार्ल्स शोभराज भी था, जिसने लंबे समय तक बेड़ियों में रखे जाने के नियम को चुनौती दी थी। न्यायाधीशों ने निरीक्षण के दौरान जो देखा, उसे अदालती रिकॉर्ड का हिस्सा बनाया। अंततः शोभराज की बेड़ियां हटाने और उसे विचाराधीन कैदियों को मिलने वाली अन्य स्वतंत्रताएं देने का आदेश दिया।

ऐसा ही एक मामला 2017 में गुजरात हाई कोर्ट के सामने आया। जस्टिस हर्षा देवानी और ए.एस. सुपेहिया 2002 के गुजरात दंगों के दौरान हुए नरोदा पाटिया नरसंहार में दोषसिद्धि के खिलाफ अपीलों की सुनवाई कर रहे थे। दोनों न्यायाधीश स्वयं नरोदा पाटिया गए, ताकि घटनास्थल और उसकी भौगोलिक स्थिति को बेहतर ढंग से समझ सकें। दोनों पक्षों के वकीलों ने उनसे ऐसा करने का अनुरोध किया था।

जमीनी हकीकत जानने के लिए इस तरह के निरीक्षण का इस्तेमाल विशेष रूप से जनहित याचिकाओं में होता रहा है। जनहित याचिका में कोई व्यक्ति दूसरों के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का मामला भी कोर्ट के सामने उठा सकता है।

कुछ दुर्लभ मामलों में न्यायाधीश स्वयं मौके पर गए हैं। लेकिन ज्यादातर मामलों में अदालतें अपनी ओर से कमिश्नर या न्यायमित्र नियुक्त करती रही हैं। इसका एक उदाहरण विधि विशेषज्ञ प्रो. उपेंद्र बक्षी द्वारा आगरा के सरकारी संरक्षण गृहों में रह रही महिलाओं की खराब स्थिति को लेकर दायर मामला है। सुप्रीम कोर्ट ने वहां रहने वाली लड़कियों को बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराने के निर्देश दिए थे और आगरा के जिला न्यायाधीश को संरक्षण गृह का निरीक्षण करने को कहा था।

यही सिद्धांत एनटीए से जुड़े मौजूदा मामले पर भी लागू होता है। सुप्रीम कोर्ट इस पर विचार कर रहा है कि एनटीए के ढांचे में क्या बदलाव जरूरी हैं। क्या उसके पास पर्याप्त स्थायी कर्मचारी हैं? क्या अलग-अलग जिम्मेदारियों के लिए विशेष विभाग हैं?

क्या उसके पास देशभर में इतनी बड़ी परीक्षाएं ठीक से कराने के लिए जरूरी सुविधाएं हैं? ऐसे में एनटीए मुख्यालय जाकर देखने से न्यायाधीश समझ सकते हैं कि एक सक्षम परीक्षा एजेंसी के लिए जरूरी बुनियादी व्यवस्थाएं केवल कागज पर हैं या वास्तव में भी हैं।

लेकिन केवल एक अच्छा मुख्यालय किसी परीक्षा को पेपर लीक से सुरक्षित नहीं बना सकता। परीक्षा कराने की प्रक्रिया काफी लंबी है। प्रश्नपत्र तैयार करने और उसे सुरक्षित रखने से लेकर उसकी छपाई या डिजिटल माध्यम से भेजे जाने, परिवहन, सुरक्षित अभिरक्षा और अंत में परीक्षा केंद्रों तक पहुंचाने और बांटने तक कई चरण होते हैं। इनमें से किसी भी चरण में हुई एक चूक पूरी परीक्षा की विश्वसनीयता पर सवाल खड़े कर सकती है। इसलिए सरकार को पूरी व्यवस्था को बार-बार परखना होगा।

लेकिन कोर्ट को भी ध्यान रखना होगा कि ऐसी व्यवस्था तैयार करना और चलाना कार्यपालिका की जिम्मेदारी है। ऐसे उदाहरण भी हैं, जब अच्छे उद्देश्य से शुरू हुआ अदालती हस्तक्षेप धीरे-धीरे प्रशासन के रोजमर्रा के फैसलों तक पहुंच गया था। 2000 के दशक की शुरुआत में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिल्ली की बसों को सीएनजी में बदलने को लेकर दिखलाई सक्रियता इसी की मिसाल है।

अदालतें सरकार से सवाल पूछ सकती हैं, उसकी जवाबदेही तय कर सकती हैं और जरूरत पड़ने पर उसे कार्रवाई करने का निर्देश भी दे सकती हैं। लेकिन किसी जटिल प्रशासनिक व्यवस्था को तैयार करने और चलाने की जिम्मेदारी अंततः कार्यपालिका की ही है।

जनसत्ता

Date: 24-09-26

पारदर्शिता का प्रश्न

संपादकीय

देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनाव आयोग की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह एक संवैधानिक और स्वायत्त संस्था है। इसकी जिम्मेदारी मतदाता सूची के शुद्धिकरण एवं अद्यतन से लेकर निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से चुनाव कराने की होती है। ऐसे में यदि आयोग के भीतर ही मतभेद पैदा हो जाएं और उनकी चर्चा मतदाता सूची तथा चुनाव प्रक्रिया जैसे मूल विषयों तक पहुंचे, तो उसकी संस्थागत विश्वसनीयता और पारदर्शिता को लेकर सवाल उठना स्वाभाविक है। मुख्य चुनाव आयुक्त और दो आयुक्तों के बीच मतभेदों को लेकर बुधवार को जिस तरह की खबरें सामने आई, उससे एक नया विवाद खड़ा हो गया है। विपक्ष ने चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर सवाल उठाते हुए इसे लोकतंत्र पर प्रहार बताया है, जबकि सत्तारूढ़ भाजपा का तर्क है कि विचार- विमर्श के दौरान निर्वाचन आयुक्तों की ओर से अलग- अलग विचार व्यक्त करना लोकतांत्रिक व्यवस्था का हिस्सा है मगर यहां सवाल वैचारिक मतभेदों का नहीं, बल्कि नियम-कानूनों से जुड़े प्रावधानों का है अगर चुनाव आयोग के भीतर कोई प्रश्न उठता है, तो क्या उसके कानूनी पहलुओं पर बारीकी से गौर कर आम सहमति बनाना जरूरी नहीं है? खबरों में कहा गया है कि दो चुनाव आयुक्तों सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी ने पिछले दस माह में निर्वाचन आयोग के फैसलों पर चौदह बार लिखित आपत्तियां दर्ज कीं। इनमें मतदाता सूची में नाम जोड़ने, हटाने और प्रक्रियागत बदलावों को लेकर गंभीर सवाल उठाए गए। आयोग में मतभेदों की ये खबरें ऐसे समय में आई हैं, जब विशेष गहन पुनरीक्षण यानी एसआइआर की प्रक्रिया को लेकर कई तरह के सवाल उठ रहे हैं। इसकी शुरुआत बिहार से हुई थी और पश्चिम बंगाल के बाद अब दिल्ली में भी लाखों मतदाताओं के मसविदा सूची से बाहर हो जाने पर चिंता जताई जा रही है। इसकी गंभीरता इस आंकड़े में दिखती है कि देश भर में अब तक पुनरीक्षण के तहत तेरह करोड़ से ज्यादा लोगों के नाम मतदाता सूची से हटाए दिए गए हैं। ऐसे में चुनाव आयोग में मतभेदों के दावे ने स्थिति को और जटिल बना दिया है। हालांकि, आयोग के हवाले से कहा गया है कि दो चुनाव आयुक्तों ने मतदाता सूची के शुद्धिकरण के दौरान नाम हटाए जाने सहित कई मुद्दे उठाए थे, लेकिन एसआइआर से जुड़े सभी फैसले सर्वसम्मति से लिए गए हैं।

यह पहली बार नहीं है, जब चुनाव आयोग के भीतर असहमति सार्वजनिक हुई है। इससे पहले वर्ष 2019 में तत्कालीन चुनाव आयुक्त अशोक लवासा ने मुख्य चुनाव आयुक्त सुनील अरोड़ा से अलग विचार व्यक्त कर

आदर्श आचार संहिता के उल्लंघन से जुड़े आदेशों में असहमति या अल्पमत की राय भी दर्ज करने की मांग की थी। इससे पूर्व वर्ष 2009 में तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त एन गोपालस्वामी ने राष्ट्रपति को चुनाव आयुक्त नवीन चावला को पद से हटाने की सिफारिश भेजी थी तब इस सिफारिश की वैधता, समय और औचित्य को लेकर सवाल उठे थे। चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली से जुड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न उसकी संस्थागत स्वतंत्रता और निर्णय प्रक्रिया का है। जब आयोग के भीतर अलग-अलग मत सामने आते हैं, तो जरूरी है कि असहमति के कारणों और निर्णय लेने की प्रक्रिया को लेकर पारदर्शिता बरती जाए, ताकि मतदाताओं में किसी तरह का भ्रम पैदा न हो। चुनाव आयोग की जिम्मेदारी सिर्फ मतदाता सूची का अद्यतन ही नहीं, बल्कि प्रत्येक पात्र नागरिक के मताधिकार की रक्षा करना भी है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 24-09-26

नए सहयोग का समय

संपादकीय

यह सुखद और स्वागतयोग्य है कि भारत दुनिया की महाशक्तियों से परे एक अलग मजबूत बहुदेशीय आवाज बनाने की कोशिश करता दिख रहा है। संयुक्त राष्ट्र महासभा के उच्च स्तरीय सत्र के दौरान ही भारत, लैटिन अमेरिकी एवं कैरेबियाई देशों के समूह (सीईएलएसी) के विदेश मंत्रियों की बैठक हुई है। इस बैठक में भारतीय विदेश मंत्री एस जयशंकर ने दोटूक कहा है कि ग्लोबल साउथ को वैश्विक व्यवस्था का भविष्य तब करने में मजबूत आवाज हासिल होनी चाहिए। वह कहने में हर्ज नहीं कि ग्लोबल साउथ अर्थात दुनिया के गरीब व विकासशील देशों को परस्पर तालमेल रखते हुए साझा हित देखना ही चाहिए। आज बड़ी शक्तियां किसी की सुनने को तैयार नहीं हैं। खासकर अमेरिका जिस ढंग से दुनिया के हालात बदलने की कोशिश कर रहा है, उसमें गरीब और विकासशील देशों पर सर्वाधिक मार पड़ रही है। यह मार दोहरी है। अव्वल तो आर्थिक नुकसान पहुंच रहा है, विकास के लिए मिलने वाले धन में कमी आई है, तो दूसरी और इन देशों की कोई सुनवाई नहीं हो रही है। अमेरिका टैरिफ की एक ही तलवार हर तरफ भोज रहा है। साथ ही ज्यादातर देशों में ऊर्जा संकट और महंगाई बढ़ाने में लगा है।

ऐसे में जरूरी है कि उपेक्षित हो रहे देशों की एक संगठित आवाज बने। भारत स्वाभाविक ही सीईएलएसी को समावेशी वैश्विक व्यवस्था को आकार देने में एक अहम भागीदार के रूप में देख रहा है। लैटिन अमेरिकी देश हो या कैरेबियाई देश, इन सभी की पीड़ा कमोवेश भारत के समान है। ये देश एक-दूसरे से सीख सकते हैं, एक-दूसरे के सहयोगी बन सकते हैं और अगर ये मिल जाएं, तो इनकी सुनवाई के रास्ते खुलना तय है। लैटिन और

कैरेबियाई देशों के इस समूह की बैठक न्यूयॉर्क में हुई है, जहां संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक के लिए तमाम देशों के प्रतिनिधि जुटे हैं। इस समूह में 30 देश शामिल हैं और इनकी अध्यक्षता भारतीय विदेश मंत्री जयशंकर और उरुग्वे के विदेश मंत्री मारियो लुबेटकिन ने की है। इस समूह में बेचैनी है, तभी इसकी बैठक में इतने देश शामिल हुए हैं। न्यूयॉर्क में जो गंभीरता दिखी है, उससे उम्मीदें बहुत बढ़ गई है। इन देशों को मिलकर एक ठोस रोडमैप तैयार करना चाहिए। भारत को इस दिशा में ज्यादा प्रयास करने की जरूरत है। 1950 के दशक में जब गुटनिरपेक्ष आंदोलन जोर-शोर से शुरू हुआ था, तब उसमें भारत की बड़ी भूमिका थी। बाद में गुटनिरपेक्षता में दरार पड़ी और सब देश अपनी-अपनी राह चल पड़े। बीच में एक ऐसा समय आया, जब बड़े बुद्ध की कोई आशंका नहीं थी और महाशक्तियां स्वयं आगे बढ़कर गरीब व विकासशील देशों की मदद करती थीं। बीते दशक में कुछ आला वैश्विक नेताओं की वजह से मदद की वह जरूरी कड़ी टूट गई है और अब जरूरतमंद देशों को नई मजबूत कड़ी का इंतजार है।

यह इन देशों के बीच व्यापार व विकास सहयोग बढ़ाने का सही वक्त है। इस दिशा में भारत सरकार को मुस्तैदी से काम करना चाहिए। आए दिन अपना रुख बदल रही महाशक्तियों से परे भारत को अपना नया बाजार और संसार चाहिए। अब तक भारत सीईएलएसी व्यापार प्रतिवर्ष 50 अरब डॉलर से अधिक का हो चुका है और इसके बढ़ने की पूरी संभावना है, जिसे हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। कोरोना हो या कोई अन्य आपदा, अनेक मौके आए हैं, जब भारत इन देशों की निःस्वार्थ मदद करता रहा है। उम्मीद कीजिए, नए वर्ष में ग्लोबल साउथ के देशों के बीच समानता का सशक्त स्वाभाविक संगठन बनेगा और ये देश कंधे से कंधा मिलाकर अपनी विकास यात्रा पर आगे बढ़ेंगे।

Date: 24-09-26

चुनाव आयोग की साख बचाई जाए

ओपी रावत, (पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त)

चुनाव आयोग के अंदर से जो खबर निकलकर सामने आई है, वह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि मतदाता सूची विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) की प्रक्रिया को लेकर दो चुनाव आयुक्तों की आपत्तियों के बावजूद चुनाव आयोग ने इसे जारी रखा, जिसके कारण देश के मुख्य चुनाव आयुक्त ज्ञानेश कुमार की कार्यशैली पर उंगली उठने लगी है।

चुनाव आयोग के इतिहास में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। कानून कहता है कि इस सांविधानिक संस्था में फैसले सर्वसम्मति से होंगे या फिर बहुमत के आधार पर। खबरों की मानें, तो चुनाव आयुक्त सुखबीर सिंह संधू और विवेक जोशी ने गुजरे 10 महीनों में कम से कम 14 बार (एक दिन तो चार बार) उन फैसलों व संदेशों

पर आपत्ति जताई, जो उनकी जानकारी के बिना लिए गए अथवा जारी किए गए थे। इसका सीधा अर्थ है कि एसआईआर से संबंधित प्रक्रिया में नियमों का उल्लंघन हुआ, क्योंकि इसे पूरे देश में कराने की जिम्मेदारी इन्हीं तीनों निर्वाचन आयुक्तों (मुख्य चुनाव आयुक्त सहित) के कंधों पर है।

इस प्रकरण के सार्वजनिक होने के बाद चुनाव आयोग ने बुधवार को मीडिया में एक बयान जारी किया, जिसमें बताया गया कि विचार-विमर्श के दौरान अलग-अलग राय सामने आना सामान्य बात है। यह फैसला लेने से पहले की प्रक्रिया है और आयोग ने अपने तमाम फैसले सर्वसम्मति या बहुमत से ही लिए हैं। मीडिया में खास तरह के नोट्स ही दिखाए जा रहे। चूंकि, यह बयान आयोग ने जारी किया है, इसलिए माना जाना चाहिए कि इसे तीनों चुनाव आयुक्तों की मंजूरी होगी, जिसका अर्थ है कि उनमें अब एकराय है।

इन सबको देखते हुए दो तरह की संभावनाएं प्रतीत हो रही हैं। एक, दोनों चुनाव आयुक्त सच बोल रहे होंगे, और दूसरी, मुख्य चुनाव आयुक्त की बातों में सच्चाई होगी। सच और झूठ का फैसला तो सांविधानिक प्रक्रिया के तहत होगा, लेकिन कुछ सवाल जरूर उठ रहे हैं, जिन पर ईमानदारी से चिंतन आवश्यक है।

पहला, अगर दोनों चुनाव आयुक्त एसआईआर की प्रक्रिया को लेकर संतुष्ट नहीं थे, तो क्या उन्होंने अपनी लिखित आपत्ति दर्ज की? अगर उन्होंने की, तो क्या फैसला उनकी राय के खिलाफ हुआ? यह स्पष्ट है कि अगर दोनों चुनाव आयुक्त लिखित रूप से आपत्ति जताते या अपने रुख पर अड़े रहते, तो फैसला उनके हिसाब से ही होता, क्योंकि बहुमत उनके पास था। मगर मुख्य चुनाव आयुक्त के रुख से लग रहा है कि चुनाव आयुक्तों को आपत्ति जरूर रही होगी, लेकिन उन्होंने यह काम मौखिक रूप में किया, जिनका निपटारा समय पर कर दिया गया था।

गौरतलब है, चुनाव आयोग के कामकाज में आपत्तियां मौखिक भी रहती हैं। मेरे खुद के कार्यकाल में ऐसे मौके आए, जब शेष दोनों चुनाव आयुक्त किसी सवाल पर अपनी राय देने में वक्त लगाया करते। एक बार तो सांविधानिक संकट पैदा होने की नौबत आ गई, तब मैंने उन्हें यह 'धमकी' दी कि अब भी उन्होंने अगर तत्परता नहीं दिखाई, तो मैं यह बात 'सार्वजनिक' कर दूंगा। यह सुनकर उन्होंने तुरंत अपनी राय बताई। इस तरह, हम बहुमत अथवा सर्वसम्मति से फैसले लिया करते थे। ऐसा आज भी होता होगा या किया जा सकता है। वैसे, इस सवाल को दरकिनार नहीं कर सकते कि अगर दोनों चुनाव आयुक्तों ने अपनी आपत्तियां लिखित में दर्ज कीं, तो फिर उन पर क्या कार्रवाइयां हुईं?

अगर मुख्य चुनाव आयुक्त ने वाकई अपने तईं फैसले लिए, तब उनके खिलाफ सांविधानिक कदम उठाए जा सकते हैं। कानून यही कहता है कि किसी भी चुनाव आयुक्त, यहां तक कि मुख्य चुनाव आयुक्त के पास भी व्यक्तिगत तौर पर यह अधिकार नहीं है कि वह निजी फैसला लें। इनको अधिकार आयोग के रूप में मिलता है, अधिकारी के रूप में नहीं। इसलिए अगर दोनों चुनाव आयुक्त की बातों में सच्चाई है, तो उनको राष्ट्रपति के पास इसकी शिकायत करनी चाहिए। अगर उनकी शिकायत सही पाई जाती है, तो सांविधानिक प्रक्रिया अपनाकर मुख्य चुनाव आयुक्त को दंडित किया जाना चाहिए। इसके लिए, संसद में उनके खिलाफ महाभियोग

लाया जा सकता है या अदालत में उनके कामकाज को चुनौती दी जा सकती है। चुनाव आयोग की छवि से खेलने का हक किसी को नहीं है।

जाहिर है, इस पूरे मामले का पटाक्षेप आवश्यक है और जो भी दोषी साबित हो, उसके खिलाफ सख्त कार्रवाई होनी चाहिए। यह सीधे-सीधे सांविधानिक अधिकारों का हनन है। और तो और, इससे चुनाव आयोग की साख का धक्का लगा है, जबकि इस संस्था की निष्पक्षता की दुहाई पूरी दुनिया देती रही है। रही बात एसआईआर की, तो इसमें गड़बड़ियां हैं, जिनको दुरुस्त करने की मांग बार-बार की जाती है। यह पहला मौका है, जब चुनाव आयोग ने नागरिकता साबित करने की जवाबदेही खुद मतदाताओं के सिर पर डाल दी है। इससे हो रही परेशानी का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि नामचीन हस्तियों को भी चुनाव आयोग की नोटिस जा रही है, क्योंकि उनके नए व पुराने डाटा में मिलान नहीं हो पा रहे।

यहां पश्चिम बंगाल का जिक्र लाजिमी है। वहां करीब 37 लाख मतदाताओं की अपील ट्रिब्यूनल के पास है, जिनमें से करीब एक लाख मामले अब तक निपटाए गए हैं। इनमें से लगभग 93,000 मतदाताओं को उसने वैध माना है, जिसका अर्थ है कि महज सात फीसदी वोटर ही 'फर्जी' हैं। जाहिर है, वैध होने के बावजूद हजारों मतदाताओं को एसआईआर प्रक्रिया द्वारा वोट देने के सांविधानिक अधिकार से वंचित किया गया, जो एक बड़ा अपराध है। अगर एक लाख मतदाताओं में 93 हजार वैध हैं, तो 37 लाख अपील में यह आंकड़ा 34 लाख तक हो सकता है। कल्पना कीजिए, इससे हमारी चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता कितनी संदिग्ध हो जाती है! एसआईआर में प्रक्रियागत चूक हो रही है, जिसको ठीक किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए नेकनीयत होना आवश्यक है।

लोकतंत्र और लोकतांत्रिक अधिकारों को मजाक समझने की इस मानसिकता को खत्म करना जरूरी है। सरकार को इस बाबत जरूरी कदम उठाने चाहिए। विपक्षी दलों की तरफ से राजनीतिक बयानबाजी होती रहेगी, लेकिन यह समय राजनीति करने से कहीं अधिक शुचिता बनाने का है। लोकतांत्रिक और सांविधानिक संस्थाओं में पारदर्शिता लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त है और भारत इस शर्त को हमेशा पूरी करता रहा है।